लक्षणामूला ध्वनिः → इदमुत्तममतिशयिनि व्यङ्ग्ये वाच्याद् ध्वनिर्बुधैः कथितः।

अविवक्षितवाच्यो यस्तत्र वाच्यं भवेद् ध्वनौ।
अर्थान्तरे सङ्क्रमितमत्यन्तं वा तिरस्कृतम् ॥

सर्वप्रथम आचार्य ध्वनि के दो भेद करते हैं।
अविवक्षितवाच्य (लक्षणामूला ध्वनिः) विवक्षितान्यपरवाच्यः (अभिधामूलध्वनिः) ध्वनिकार आचार्य आनन्दवर्धन ध्वन्यालोक प्रथम उद्योत में लिखते हैं — "अस्ति ध्वनिः। स चाविवक्षितवाच्यो विवक्षितान्यपरवाच्यश्चेति द्विविधः सामान्येन"
तथा च द्वितीय उद्योत में आचार्य आनन्दवर्धन अविवक्षितवाच्य के भेद बताते हैं →
"अर्थान्तरे संक्रमितमत्यन्तं वा तिरस्कृतम्।
अविवक्षितवाच्यस्य ध्वनेर्वाच्यं द्विधा मतम् ॥"

अविवक्षित वाच्य की व्याख्या करते हुए आचार्य अभिनवगुप्त लोचन में लिखते हैं → "वाच्य शब्देन स्वात्मा तेनाविवक्षितोऽप्रधानीकृतः स्वात्मा येनेत्यविवक्षितवाच्यो व्यञ्जकोऽर्थः।"
आचार्य मम्मट वृत्ति में स्पष्ट करते हैं →
"लक्षणामूलगूढ व्यङ्ग्यप्राधान्ये सत्येव, अविवक्षितं वाच्यं यत्र स 'ध्वनौ' इत्यनुवादाद् ध्वनिरिति ज्ञेयः।"
अर्थात इस ध्वनि में वाच्यार्थ अविवक्षित अर्थात् तात्पर्य का अविषय हुआ करता है। वाच्यार्थ बाधित होकर लक्ष्यार्थ का बोध कराता हुआ किसी व्यङ्ग्यार्थ की प्रतीति कराता है।

अर्थान्तरसंक्रमितवाच्य: → 'वाच्यं क्वचिदनुपयुज्यमानत्वादर्थान्तरे परिणमितम्' अर्थात् जहाँ व्यञ्जक रूप में आने वाला वाच्यार्थ अपने स्वरूप में (प्रकरण दृष्ट्या) अनुपयुक्त हो जाता है, तथा अपने से भिन्न किसी अर्थ में परिणत हो जाता है। अर्थात व्यञ्जक में स्थित मुख्यार्थ का स्वाभिन्न किन्तु अपने ही विशेष रूप अर्थ (लक्ष्य) में परिणति ही अर्थान्तरसंक्रान्ति है।
जैसे — त्वामस्मि ________ । यहाँ वच्मादि उपदेशादि रूप में परिणत हो जाते हैं।
उपादान लक्षणा इसका मूल है

→ अत्यन्ततिरस्कृतम् → यह ध्वनि लक्षणलक्षणामूलक होती है।
आचार्य लिखते हैं → क्वचिदनुपपद्यमानतया अत्यन्तं तिरस्कृतम्।
अर्थात् जहाँ व्यञ्जकरूप में आने वाला वाच्यार्थ (प्रकरणवश)
स्वस्वरूप से अनुपयुक्त हो जाता है तथा अपने अर्थ का
सर्वथा त्याग करके अन्यार्थ का लक्षक मात्र हो जाता है।
उदा० → उपकृतं बहु तत्र किमुच्यते ॥
एतदपकारिणं प्रति विपरीतलक्षणया कश्चिद्
वदति। यहाँ अपकारी के प्रति कहे गये उपकृतं,
सुजनता, सखे, सुखितम् शब्द अपने अर्थ को सर्वथा त्यागकर
अपकृतं, दुर्जनता, शत्रु, दुःखितम् रूप में परिणत हो जाते हैं।

अभिधामूला ध्वनिः

'विवक्षितं चान्यपरं वाच्यं यत्रापरस्तु सः।
अन्यपरं व्यङ्ग्यनिष्ठम्।
जहाँ अन्वय योग्य तो होता है अर्थात् तात्पर्य का विषय तो रहता है किन्तु वह अपने से अधिक रमणीय व्यङ्ग्य अर्थ की प्रतीति कराने हेतु अपने स्वरूप को गौण बना लेता है अर्थात् व्यङ्ग्यपरक हो जाता है
अविवक्षितवाच्य और विवक्षितान्यपर वाच्य नामकरण के हेतु आचार्य अभिनवगुप्त लोचन में बताते हैं —" अनेन हि नामद्वयेन ध्वननात्मनि व्यापारे पूर्वप्रसिद्धाभिधातात्पर्यलक्षणात्मकव्यापारत्रितयावगतार्थप्रतीतिः प्रतिपत्तृगतायाः प्रयोक्त्रभिप्रायरूपाश्च विवक्षायाः सहकारित्वमुक्तम् इति ध्वनिस्वरूपमेव नामभ्यामेव प्रोज्जीवितम्।"

को॰ व्यलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यो ~~व्य~~ लक्ष्यव्यङ्ग्यक्रमः परः॥
पुनः अभिधामूला ध्वनि के भेद करते हुए ~~कहते हैं~~ सर्वप्रथम दो भेद करते हैं — (1) असंलक्ष्यक्रम व्यङ्ग्य
(2) संलक्ष्यक्रम व्यङ्ग्य
असंलक्ष्यक्रम व्यङ्ग्य में वाच्य (व्यञ्जक) और व्यङ्ग्य का क्रम तो रहता है, किन्तु शतपत्रपत्रभेदन्याय से क्रम लक्षित नहीं होता
आचार्य मम्मट वृत्ति में कहते हैं →
न खलु विभावानुभावव्यभिचारिण एव रसः, अपि तु रसस्तैरित्यस्ति क्रमः। स तु लाघवान्न लक्ष्यते।

रसभावतदाभास भाव शान्त्यादिरक्रमः।
भिन्नो रसाद्यलङ्कारादलङ्कार्यतया स्थितः॥

असंलक्ष्य क्रम व्यङ्ग्य ध्वनि में रसादि का ग्रहण किया जाता है। रसादि से रस, भाव, रसाभास, भावाभास, भावोदय, भावशान्ति, भावशबलता, भावसन्धि ये ग्रहण किये जाते हैं।

रस मुख्यतः नौ होते हैं —

शृङ्गारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः।
बीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः॥
निर्वेदस्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रसः।

शृङ्गार के दो भेद संयोग, विप्रलम्भ
शून्यं वासगृहं —— ।

भाव → रतिर्हासश्च —— ।
निर्वेद ग्लानि —— ।

भाव → रतिर्देवादिविषयः व्यभिचारी तथाञ्जितः। भावः प्रोक्तः
अर्थात् जहाँ देव-मुनि-गुरु-नृप-पुत्रादिविषया रति हो वहाँ वह भाव ही होती है। ② अङ्गीरूप में विवक्षित व्यभिचारी भाव भी भाव संज्ञा को प्राप्त कर लेता है ③ असमासादित परिपोष स्थायिभाव भी ~~रस~~ भाव ही रहता है। रस स्थिति को प्राप्त नहीं करता।
अञ्जित व्यभिचारी → जाने कोपपराङ्मुखी —— । यहाँ निर्वेद प्रतिआत्मा

→ तदाभासा अनौचित्यप्रवर्तिताः।
नागोजी भट्ट लिखते हैं → अनौचित्य → 'सहृदयानामनुचितधीः'
लोक और शास्त्र की दृष्टि में अनुचित रसाभास या भावाभास होते हैं।
एक की अनेकविषयिणी रति, तिर्यग्गत रति, उपपति आदि अनौचित्य से प्रवृत्ति होती है।

→ भावस्य शान्तिरुदयः सन्धिः शबलता तथा॥
भावशबल → क्वाकार्यं —— ।

→ मुख्ये रसेऽपि तेऽङ्गित्वं प्राप्नुवन्ति कदाचन॥
ते भावशान्त्यादयः। अर्थात् भावश्च भावशान्त्यादयश्चेति
भाव और भावशान्त्यादि भी रस के मुख्य होने पर भी

Scanned with CamScanner